**ओ३म्**

**‘मनुष्य जन्म की पृष्ठभूमि, कारण एवं परम उद्देश्य’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

संसार के सभी प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठतम प्राणी है। इसका कारण मनुष्यों में सत्य व असत्य का विवेक कराने वाली बुद्धि होती है जबकि अन्य प्राणियों के पास विवेक कराने वाली बुद्धि नहीं होती। मनुष्य अन्य प्राणियों से कुछ भिन्न एक जाति है जिसमें स्त्री व पुरुष सम्मिलित हैं। आजकल जो जातिसूचक शब्दों का प्रयोग आर्य वा हिन्दू करते हैं, उसे जाति कहना वैदिक परम्पराओं एवं जाति शब्द के अर्थ के विरुद्ध है। जाति का सम्बन्ध प्रसव की समानता से जुड़ा है जिससे सभी मनुष्यों की एक ही जाति सिद्ध होती है क्योंकि संसार के सभी स्त्री व पुरुषों का परस्पर सम्बन्ध होने से मनुष्य सन्तान, पुत्र व पुत्री, का जन्म होता है। इसी प्रकार से पशु जाति है जिसमें गाय, घोड़ा, कुत्ता, बिल्ली, लंगूर, बन्दर आदि अनेक प्रकार की उपजातियां है। इसमें अन्तर्जातीय सन्तानोत्पत्ति नहीं होती अर्थात् गाय व बैल से, कुतिया व कुत्ते, घोडे़ व घोड़ी आदि से ही होती है अन्यथा नहीं। अतः गाय, भैंस, घोड़ा आदि अलग-अलग पशु जाति की उपजातियां हैं। संसार के सभी मनुष्यों में समान रूप से प्रसव सम्भव होने के कारण सम्पूर्ण मनुष्य जाति एक ही जाति है। हां, गुण, कर्म व स्वभाव से इसके ज्ञानी-अज्ञानी, बली-निर्बल, अध्यापक, वैद्य व चिकित्सक, सैनिक, राजा, सेवक आदि भेद हो सकते हैं। यह जातियां नहीं अपितु गुण-कर्मानुसार वर्ण होते हैं। हम इस लेख में मनुष्य जाति की पृष्ठभूमि पर विचार कर रहे हैं। मनुष्य जाति की पृष्ठभूमि में मुख्य कारण एक चेतन तत्व जीवात्मा व ईश्वर की सत्ता का होना है। यह जीवात्मा अविनाशी, अनुत्पन्न, सनातन, नित्य, अनादि सत्ता है जिनकी सृष्टि में संख्या मनुष्य के ज्ञान के अनुसार अनन्त वा असंख्य हैं। इनके अपने-अपने गुण कर्म व स्वभाव हैं। जीवात्मा एकदेशी, अनुत्पन्न, अनादि, अनुत्पन्न, अविनाशी, अमर, नित्य, कर्म-फल के चक्र में फंसा हुआ, कर्म-फल व प्रारब्ध के अनुसार सुख-दुःख रूपी फलों के भोग के लिए ही भिन्न-भिन्न मनुष्य, पशु, पक्षी व अन्य योनियों में जन्म लेने वाला है। यदि ईश्वर जीवात्मा को जन्म न दे तो फिर इसका अस्तित्व होने के बाद भी यह अनुपयोगी होकर रह जाये। इसका स्वभाव (ईश्वरीय प्राकृतिक नियम) ही यह है कि ईश्वर के द्वारा अपने पाप-पुण्य रूपी कर्मों का फल भोगने के लिए इसका जन्म होता है। जन्म लेने में यह ईश्वर के पराधीन है। मनुष्य योनि में जन्म होने पर यह पाप व पुण्य रूपी कर्म करने में सफल होता है। अन्य इतर योनियां केवल भोग योनियां हैं। ईश्वर सर्वव्यापक, निराकार और सर्वान्तर्यामी रूप से जीवात्मा के प्रत्येक कर्म का साक्षी होता है। इन कर्मों का सम्मिलित परिणाम ही इसका भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म होना होता है। एक योनि में जन्म लेने के लिए प्रारब्ध कारण बनता है जिसके आधार पर किसी योनि विशेष में इसकी जाति अर्थात् मनुष्य, पशु व पक्षी आदि सहित आयु व सुख-दुःख रूपी भोग निर्धारित होते हैं जो ईश्वर की व्यवस्था से इसे मिलते रहते हैं। **जीवात्मा का सनातन अस्तित्व, एक देशी व सूक्ष्म तत्व होना, ज्ञान व कर्म इसके स्वभाविक गुण होना और ईश्वर की सभी जीवों के लिए सृष्टि की रचना करने, पालन करने व जीवात्माओं को उनके पूर्व जन्मानुसार भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म देने की सामर्थ्य ही जीवात्मा के मनुष्य व अन्य योनियों में जन्म की पृष्ठभूमि और कारण है।** इसके विस्तार से अध्ययन के लिए सत्यार्थप्रकाश सहित वेद, उपनिषद और दर्शन आदि ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये।

 जीवात्मा कर्मानुसार जन्म लेता है यह बात तो सृष्टि में प्राणियों के आचार व व्यवहार को देख कर भी सत्य सिद्ध होती है। **अब जानने योग्य प्रश्न यह है कि मनुष्य जन्म का उद्देश्य क्या है?** मनुष्य जन्म का मुख्य उद्देश्य दुःखों की निवृति है। हम सभी प्राणियों को कर्म करते हुए देखते हैं। यह सभी प्राणी सुख की प्राप्ति के लिए ही सभी कर्म करते हुए प्रतीत होते हैं। प्रातः काल उठकर भ्रमण, आसन, व्यायाम व प्राणायाम करना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होता है। यह स्वास्थ्य ही सुख का आधार है। यदि स्वास्थ्य अच्छा नहीं होगा तो मनुष्य को दुःख होता है। शरीर आदि व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है और शीघ्र मृत्यु का ग्रास बन जाता है। अतः हमारे सभी कर्म मुख्यतः स्वास्थ्य व सुखों की प्राप्ति व भोग सहित दुःखों की निवृति के लिए ही किये जाते हैं फिर भी संसार का कोई मनुष्य यह दावा नहीं करता कि वह पूर्णतया सुखी है। सुख का परिणाम ही दुःख होता है। अधिक भोजन कर लिया तो उदर विकार होने से दुःख शीघ्र या कुछ विलम्ब से सामने आ जाता है। सुख के लिए धनोपार्जन करने में भी जो पुरुषार्थ किया जाता है वह भी कष्टसाध्य ही होता है। अर्जित धन की रक्षा करना भी सबके लिए सम्भव नहीं होता। अनेक प्रकार के दुःख जो धनिक लोगों में धन व सम्पत्ति के कारण होते हैं, समाज में देखने में आते हैं। स्वास्थ्य सम्बन्धी दुःख भी सभी मनुष्यों को समय समय पर आते जाते रहते हैं, जिनसे बचना दुष्कर है। **अतः संसार में मनुष्य जन्म लेकर भी कोई व्यक्ति ऐसा देखने में नहीं आता जिसे कोई दुःख न हो।** सबसे बड़ा और अन्तिम दुःख मृत्यु का होता है। मृत्यु के बाद पुनः जन्म की प्रक्रिया में पिता-माता के शरीर में जाना और वहां दस माह तक शरीर निर्माण की प्रक्रिया में रहने व माता के गर्भ में उलटा लटका रहने सहित मल-मूत्र आदि पदार्थों के सान्निध्य में रहना भी सुख की नहीं दुःख की ही स्थिति है। अतः दुख की निवृत्ति के सभी सांसारिक साधन उपयोगी नहीं हैं। मृत्यु आदि दुःख से बचने के लिए ही महर्षि दयानन्द व भगवान बुद्ध ने अपने सुखी पारिवारिक जीवन का त्याग कर दुःख के स्वरूप को जानने एव उसको दूर करने के उपायों को जानकर उनके पालन हेतु कठोर तप किया। **महर्षि दयानन्द इस कार्य में सफल हुए। उन्होंने जो ज्ञान व साधन जाने व प्राप्त किये और जिनका उन्होंने अपने निजी जीवन में उपयोग व प्रयोग अर्थात् आचरण किया, उससे सारे संसार को लाभान्वित किया।** वह चाहते तो अपना कल्याण करते और समाधि का असीम आनन्द भोगते परन्तु परोपकार के लिए उन्होंने अपनी सभी उपलब्धियों को सार्वजनिक ही नहीं किया अपितु इसका प्रचार व प्रसार करने में अपने जीवन का एक एक क्षण बिना किसी निजी प्रयोजन व लाभ के व्यतीत किया और अन्त में प्राण भी दे दिए।

 महर्षि दयानन्द जी ने जो ज्ञान व विवेक प्राप्त किया वह उनके सभी ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। **उसका निष्कर्ष है कि जीवात्मा के दुःखों की पूर्ण की निवृत्ति सद्धर्म के पालन और मोक्ष की प्राप्ति में होती है।** सद्धर्म मनुष्यों के सत्य कर्तव्यों को कहते हैं। यह सभी सत्कर्तव्य वेदों व वैदिक साहित्य में उपलब्घ होते हैं जिनका सरलीकरण महर्षि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य सहित सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि व आर्याभिविनय आदि अनेक ग्रन्थों में किया है। इसको संक्षेप में इस प्रकार जाना जा सकता है कि पाप वा असत्य कर्मों का फल दुःख होता है और पुण्य वा सत्य कर्मों का फल सुख होता है। यदि हम सकाम सत्य व पुण्य कर्म भी करेंगे तो भी हमारा एक के बाद दूसरा जन्म होता रहेगा। इसके लिए मनुष्य को वेद विहित सत्य कर्मों को करना है और साथ ही ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना सहित अग्निहोत्रादि कर्म, माता-पिता-आचार्य-गुरू-विद्वान आदि की सेवा व सत्कार एवं सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा का भाव रखते हुए उनके पोषण में सहायक होना है। योग ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना को ही कहते हैं। इसके सिद्ध होने का अर्थ है समाधि में ईश्वर का साक्षात्कार होना। यह ईश्वर साक्षात्कार तभी सम्भव होता है जब जीवात्मा पर अंकित सभी पाप व असत्य कर्मों के संस्कार रूपी मल-विक्षेप-अहंकार नष्ट व दग्ध-बीज हो जाते हैं। यह स्थिति ईश्वर का ध्यान करने, ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभावानुसार अपना आचरण सुधारने वा ईश्वर के गुणों के अनुरूप करने व अपना सारा समय परोपकार व दुखियों की सेवा में लगाने पर ही प्राप्त होती है। **समाधि अवस्था में ईश्वर का साक्षात्कार हो जाने पर मनुष्य जन्म मरण के चक्र से छूट जाता है और ईश्वर के निरन्तर आनन्द रूपी सान्निध्य को प्राप्त कर उसमें ही आनन्द को भोगता है। यही मनुष्य जीवन का उद्देश्य, लक्ष्य वा परम उद्देश्य है।** महर्षि दयानन्द इसी मार्ग पर चले और कृतकार्य हुए। हमारे सभी ऋषि-महर्षि-योगी-सन्त भी इसी मार्ग का अवलम्बन अपने-अपने जीवन में करते रहे। यह साधना व कार्य कुछ लोगों के ही करने के लिए नहीं अपितु सभी मनुष्य, स्त्री वा पुरुष इसके अधिकारी व पात्र हैं। कभी न कभी तो हमें इसे अपनाना ही है क्योंकि इसके बिना जीवात्मा की मोक्ष की यात्रा पूरी नहीं होती। वह कर्मफल बन्धन में पड़ा रहता है। **यह मोक्ष प्राप्ती ही मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है।** यहां यह भी बता दें कि हम सभी मनुष्यों को इससे पूर्व संसार की सभी योनियों में अनेक-अनेक बार जन्म हो चुके हैं। अनेक बार हम मोक्ष में भी गये है और अवधि पूरी होने पर लौटे हैं। वहां से आकर हम फिर कर्म के बन्धनों में फंस कर वर्तमान स्थिति को प्राप्त हुए हैं। यह तथ्य सत्य है जिसे जानकर सद्कर्मों सहित ईश्वर की सच्ची वैदिक विधि से उपासना में जुट जाना चाहिये जिससे कालान्तर में मोक्ष प्राप्त हो सके। अन्य मार्ग मंजिल पर पहुंचाने के स्थान पर लक्ष्य से दूर करते हैं। अतः केवल वैदिक साधनों का ही अवलम्बन करना उचित है।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**